

**(જિનમંદિરના વાર્ષિક પ્રતિષ્ઠા દિવસ અંતર્ગત  
અધ્યાત્મ યુગપુરુષ પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના  
શ્રી સમયસાર ગાથા-૧ ઉપરના વિવિધ પ્રવચનો)  
(તા. ૨૬-૫-૨૦૧૭ થી ૩૦-૫-૨૦૧૭)**

**વીર સંવત ૨૪૭૯ ફાગણ સુદ-૧૦, સોમવાર  
તા. ૨૩-૨-૧૯૫૩, ગાથા-૧, પ્રવચન-૩**

આ સમયસારની ગાથા પહેલી. ભગવાન કુંદકુંદાચાર્ય સમયસારની શરૂઆત કરતાં સિદ્ધોને નમસ્કાર કરે છે. એનો અર્થ એ કે પ્રથમ પોતાના આત્મામાં જ્ઞાનમાં સિદ્ધપદને સ્થાપન કરે છે. અને શ્રોતાને (કહે છે), તમારું સિદ્ધપદ તમારામાં છે. એવું શ્રોતાના જ્ઞાનમાં સ્થાપન કરે છે કે સિદ્ધ સિવાય તારી કોઈ બીજી ચીજ નથી. સિદ્ધગતિ એ તારી ચીજ છે, તારું સ્વરૂપ છે. મારા આત્મામાં અને તમારા આત્મામાં સિદ્ધપણું સ્થાપીને એ સમયસારની શરૂઆત કરે છે.

એમાં કહ્યું કે સિદ્ધ કેવા છે? કે ‘ધ્રુવમ’. ધ્રુવ વિશેષણ આવી ગયું. સિદ્ધ ભગવાન ધ્રુવ છે, ધ્રુવ. ‘ધ્રુવ વિશેષણસે પંચમગતિમેં ઈસ વિનશ્વરતાકા વ્યવચ્છેદ હો ગયા.’ ચાર ગતિ જો પર નિમિત્તસે આત્મામેં હોતી હૈ, ઉસકા ભી શ્રોતાજનોંકો નિર્ણય કરાયા. ચાર ગતિ કમકે નિમિત્તસે હોતી હૈ તો વહ તેરા સ્વભાવ નહીં. મેં શ્રોતાકો અંતરમેં જ્ઞાનપર્યાયમેં આત્માકા સ્થાપન કરકે સમયસાર કરતા હૂં. તો ઉસકા વહ અર્થ હુઆ કિ આપકે હૃદયમેં ચાર ગતિ, જો કમકે નિમિત્તસે ગતિ હોતી હૈ ઉસકા આદર હોના ચાહિયે નહીં. કહો, સમજમેં આતા હૈ? સ્વર્ગગતિ, નર્કગતિ, પશુગતિ યા મનુષ્યગતિ યા તિર્યચગતિ, વહ કોઈ ભી ગતિ કમકે નિમિત્તસે આત્માકી પર્યાયમેં હોતી હૈ. જિસે ધર્મશ્રવણ કરના હૈ ઉસકી પર્યાયમેં સિદ્ધકો સ્થાપન કિયા કિ મેં સિદ્ધ હૂં તો સિદ્ધકે સિવા જિસ કમકે નિમિત્તસે ચાર ગતિ હોતી હૈ ઉસકા કર્મ ઓર કમકે નિમિત્તસે હુઆ ભાવ, ઉસકા અંતરમેં આદર હોના ચાહિયે નહીં. ઉસકો યહાં શ્રોતા કહતે હૈં. સમજમેં આયા?

‘ધ્રુવમ’. શ્રોતાકો કહતે હૈં, સ્વયંને તો દષ્ટિમેં લિયા હૈ, મેં આત્મા સિદ્ધપર્યાય પ્રગટ હોનેકી લાયકાતવાલા હૂં. ઐસી દષ્ટિ રખકરકે જગતકો ભી કહતે હૈં કિ તુમ ભી તુમ્હારી પર્યાયમેં-અવસ્થામેં સિદ્ધ હો. કેસા? ‘ધ્રુવમ’. કમકે નિમિત્તસે જો ગતિ હોતી હૈ વહ

तेरा स्वभाव नहीं। कोई गतिमें जाना और गतिमें आना वह तेरा स्वभाव नहीं है।  
ऐसा निर्णय करके समयसार सुनो। तो उसको आत्माके लक्ष्यसे राग घटकर परमात्मा  
हो जानेका उसे मौका है। ध्रुव आ गया।

‘और वह गति अनादिकावसे परभावोंके निमित्तसे होनेवाले परमें भ्रमण,  
उसकी विश्रान्ति (अभाव) के वश अचलताको प्राप्त हैं।’ दूसरा विशेषण दिया।  
हे श्रोताओ! तुम्हारे हृदयमें मैं यह सिद्धपद स्थापन करता हूँ। वह सिद्ध कैसे हैं?  
अचल हैं। ‘अनादिकावसे परभावोंके निमित्तसे...’ पुण्य-पाप, काम, क्रोध, दया, दानका  
जो विकल्प होता है वह परभाव विकार है। उसके निमित्तसे होनेवाला परमें भ्रमण,  
दर्ष-शोकसे भ्रमण करना, विश्राम आता नहीं और अशांति आती है, उसकी विश्रान्तिके  
वश अचलताको प्राप्त हैं। सिद्धमें वह भ्रमण है नहीं। तो तेरे पदमें भ्रमणका जो भाव  
है वह भी तेरा नहीं। ऐसा निर्णय करो।

सिद्धका स्थापन किया न? तेरी पर्यायमें सिद्धपद स्थापन करता हूँ तो सिद्ध तो  
अचल हैं। उसमें जो परभावके निमित्तसे जो भ्रमण है, वह तेरेमें वास्तवमें है नहीं।  
तेरेमें भी जो पुण्य-पापका भाव होता है वह भ्रमणका कारण है, वह विश्रामका कारण  
नहीं, वह विश्रान्तिका कारण नहीं। तो सिद्ध तो विश्रान्त लुभे, भ्रमण रहित लुभे हैं।  
हम तो हमारेमें और तुम्हारेमें सिद्धपद स्थापन करके बात करता हूँ। तो तुम्हारी पर्यायमें-  
अवस्थामें भ्रमणका भाव है उसको हेय समजो। क्योंकि सिद्धपदका स्थापन किया है। समजमें  
आता है?

देजो! श्रोता कैसा होना चाहिये और वक्ता कैसा होना चाहिये? वक्ता भी ऐसा  
चाहिये कि उसको सिद्धपदका ही स्थापन करते हैं। वक्ताके मुँहमें यदि पुण्यकी मुष्यता  
और परिभ्रमणके कारण आती हो, तो वह धर्मका वक्ता नहीं। ऐसा आया कि नहीं?  
भाई! वक्ताने कदा कि हम सिद्ध हैं, तुम सिद्ध हो। तो सिद्ध परमात्माके सिवा जो  
कभके निमित्तसे अपनेमें अपने कारणसे जो विकार आता है उसको भ्रमणका कारण कहते  
हैं। वह भ्रमणसे लाभ होगा ऐसा यदि वक्ता कहे तो वह वक्ता नहीं। और श्रोता  
वह भ्रमणके कारणसे धर्मका लाभ माने तो वह श्रोता भी नहीं।

अपनेमें और परमें सिद्धपद स्थापन करके समयसार शुरू करते हैं। ‘अनादिकावसे  
परभावोंके निमित्तसे होनेवाले...’ पुण्य-पाप, काम, क्रोध, दया, दान, विकार भ्रमण  
(रूप है)। वह अचल अचल अचलपद नहीं हुआ। सिद्धपद तो अचल हुआ। ‘भ्रमण,  
उसकी विश्रान्ति (अभावके) वश अचलताको प्राप्त है। इस विशेषणसे, चारों  
गतियोंमें पर निमित्तसे जो भ्रमण होता है, उसका पंचमगतिमें व्यवच्छेद हो  
गया।’ सिद्धमें वह भ्रमण है नहीं। तुम्हारेमें सिद्धपद स्थापन किया है। तो कोई भी

गतिकी यदि भावना तुझे रहेगी और गतिके निमित्तसे अथवा कर्मके निमित्तसे भाव-परभाव हुआ उसकी यदि रुचि और भावना रही तो सिद्धपदको तुमने तुम्हारी पर्यायमें स्थापन नहीं किया. समझमें आता है? श्रोता और वक्ताका निमित्त-नैमित्तिक संबंध सिद्ध करते हैं. श्रोता और वक्ताका निमित्त-नैमित्तिक संबंध.

वक्ता ऐसा कहता है कि तुम सिद्ध हो. उसमें ध्रुव और अचल पद तुम्हारा है. चल और अध्रुव जो विकार होता है, वह तुम्हारा पद नहीं. वक्ता ऐसा कहता है, श्रोता ऐसा सुनता है. यथार्थ है. ऐसी बात यदि स्वीकार करे तो निमित्त-नैमित्तिक श्रोता-वक्ताका संबंध हुआ. यदि ऐसा निर्णय नहीं करे तो श्रोता-वक्ताका निमित्त-नैमित्तिक संबंधका अभाव है. उसको श्रोता ही नहीं कहते और श्रोता वक्ताको सुनता है ऐसा भी कहते नहीं. ऐसा आया कि नहीं?

‘चारों गतियोंमें परनिमित्तसे जो भ्रमण होता है, उसका पंचमगतिमें व्यवच्छेद हो गया. और वह जगतमें जो समस्त...’ दूसरा विशेषण हुआ. अब, सिद्धका तीसरा विशेषण. देओ! अक-अक पदमें कितनी व्याख्या करते हैं! सिद्ध परमात्माको वंदन करनेवाला ऐसा होना चाहिये. सिद्धका जिसने अपनी पर्यायमें सत्कार, स्वीकार किया, उसे भ्रमणके भावका स्वीकार नहीं होना चाहिये. उसे भ्रमणके भावका और कर्मके निमित्तसे उत्पन्न हुई गति, (उसका आदर नहीं होना चाहिये). गति और भ्रमणभाव. गति तो नामकर्मके निमित्तसे होती है और भ्रमणभाव मोलकर्मके निमित्तसे होता है. भाई! दोनों बात ली है. क्या कला, समझमें आया?

योग और कषाय, दोसे कर्मबंधन होता है. नामकर्मके निमित्तसे गति होती है. अपने कारणसे, योग्यतासे. और मोलकर्मसे भ्रमण होता है. उसका विच्छेद कर दिया. यदि तुम यथार्थ धर्मका श्रोता धर्म श्रवण करने आया हो तो हम तुमको कहते हैं कि गति कर्मके निमित्तसे लुयी वह तुम्हारेमें नहीं है. क्योंकि सिद्धमें नहीं है. सिद्धमें नहीं है तो तुम्हारी पर्यायमें हम गतिका अभाव सिद्ध करते हैं. जिस भावसे गति मिलती हो वह भी तुम नहीं और भाव है वह भी तुम नहीं. राग-द्वेष, पुण्य-पाप, दया-दान, काम-क्रोध, वह तो भ्रमणका कारण है. शुभाशुभभाव भ्रमणका कारण है. वह भ्रमण तुम नहीं. क्योंकि सिद्धमें भ्रमण नहीं है. तुम्हारी पर्यायमें मैंने सिद्धपद स्थापन किया है. तो जिसने हृदयमें सिद्धका स्वीकार किया, उसके भ्रमणके भावका स्वीकार नहीं होना चाहिये. (उसमें) आ गया (कि) व्यवहारका आदर होना चाहिये नहीं. उसकी पर्यायमें पुण्य-पापका भाव होता है, लेकिन उसका स्वीकार नहीं होना चाहिये. स्वीकार तो, मैं ज्ञाता-दृष्टा सिद्ध समान हूँ, ऐसा स्वीकार होना चाहिये. तो वह श्रोता है, नहीं तो श्रोता भी नहीं है. केसरीमल्ल! ऐसी चीज है. श्रोताकी ना कहते हैं, तुम श्रोता भी नहीं

हो. यहि तुम औसा कहते हो कि मेरेमें विकार होता है और विकारसे लाभ होगा, और क्रमशः रागको टालकर पुण्यसे मेरेमें धर्म होगा, तो औसी बात है ही नहीं.

प्रथमसे ही यह स्वीकार करवाते हैं कि समयसार-आत्मा सिद्ध समान में हूँ, औसी जिसको प्रथम निर्णय और रुचि हो, उसे भ्रमण और गतिके भावका आदर नहीं होता. और यहि उसका आदर करता है, निमित्तका आदर करे तो निमित्तकी ओरका विकारका आदर हुआ. विकारका आदर करे उसको भ्रमणका आदर हुआ. भ्रमणका आदर हुआ उसको सिद्धका आदर नहीं हुआ. उसने सिद्ध भगवानका सत्कार और वंदन नहीं किया. वह कहते हैं.

तीसरा विशेषण. 'और वह जगतमें जो समस्त उपमायोग्य पदार्थ हैं उनसे विवक्षाण-अद्भुत महिमावाली है,...' सिद्धगति कैसी है? अद्भुत महिमावाली सिद्धगति. जगतमें जो समस्त उपमायोग्य, उपमयोग्य-उपमाके वायक पदार्थ, 'उनसे विवक्षाण...' विपरीत वक्षाणवाली 'अद्भुत महिमावाली है, ईसविये उसे किसीकी उपमा नहीं मिल सकती.' सिद्धगतिको कोई उपमा मिलती नहीं. जितने पदार्थ उपमेय हैं, सब सिद्धमें लागू नहीं पड़ते. तो तेरी पर्यायमें भी सिद्ध पदार्थका जो निर्णय किया और तुझे धर्मकी भावना हो, तो उपमावायक पदार्थसे भिन्न तेरा स्वभाव है, औसा आत्मामें उसको निर्णय करना चाहिये.

'ईस विशेषणसे चारों गतियोंमें जो परस्पर कथंचित् समानता पाई जाती है, उसका पंचमगतिमें निराकरण हो गया.' समझे? उपमावायक चार गतिमें तो कथंचित् (समानता पाई जाती है). कर्मके कारणसे स्वर्ग मिलता है और कर्मके कारणसे नर्क मिलता है. कर्मकी अपेक्षासे चारों गति समान हैं. भले पुण्यसे स्वर्ग मिलो और पापसे नर्क मिलो, लेकिन पुण्य-पाप दोनों कर्म है. तो कर्मकी समानता चारों गतिमें आयी. कथंचित् समानता आयी. भले पुण्य और पाप हो. चारों गति-स्वर्ग, नर्क सब गति है. वह कर्मका ही कार्य है और विकार है. तो चार गतिकी कथंचित् उपमा तो परस्पर अकट्टसरेमें लागू पड़ती है. स्वर्ग-नर्कमें. सिद्धमें कोई लागू पड़ती नहीं. औसी तेरी सिद्धदृशा तेरी पर्यायमें मैंने स्थापित की है तो उपमावायक पदार्थ है, उससे तेरा वक्षाण ही भिन्न है. वक्षाण ही भिन्न है, तेरा स्वभाव भी सिद्ध समान भिन्न है. औसा निर्णय करे उसको यहां श्रोता कहते हैं.

अब, चौथा विशेषण. 'और उस गतिका नाम...' गति प्राप्त हुई न? गति शब्द लिया है. 'ध्रुवमचलमणोवमं'. ये तीनका अर्थ हो गया. अब, 'गदिं पत्ते', 'गदिं पत्ते'. 'गदिं पत्ते'का अर्थ करते हैं. कैसी है सिद्धगति, जो सिद्ध प्राप्त हुआ? सिद्धगतिका 'नाम अपवर्ग है.' अपवर्ग. 'धर्म, अर्थ और काम-त्रिवर्ग कहलाते हैं;...' देओ,

क्या कलते हैं? धर्म नाम आत्मामें दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजाका भाव होता है वह पुण्य है. उस पुण्यको यहां व्यवहारधर्म कहा है. उस व्यवहारधर्मसे विवक्षाण मुक्तिगति है. धर्म कहा न? त्रिवर्ग नहीं कलते? धर्म, अर्थ और काम.

धर्म, अर्थ और काम. धर्म नाम पुण्य. दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा, कर्षणा, कोमलता, यात्रा उसमें जो कषायकी मंदता होती है, उसको यहां व्यवहारधर्मरूपी पुण्य कलते हैं. वह पुण्य सिद्धमें नहीं है. वह पुण्य सिद्धमें नहीं है. पुण्य सिद्धमें नहीं है तो तेरी पर्यायमें हमने सिद्धका स्थापन किया है. तो तेरी पर्यायमें जो पुण्य होता है, उसका स्वीकार नहीं. यदि तेरी पर्यायमें पुण्यका स्वीकार हो तो तुमने सिद्धपदको स्थापन किया नहीं. अथवा तूने सिद्धको वंदन ही नहीं किया. कल, समझमें आता है? जिसने सिद्धको वंदन किया, सत्कार किया, स्वीकार किया उसने धर्म, जो पुण्य उसका अस्वीकार किया. जिसको पुण्यका स्वीकार है, उसको सिद्धका स्वीकार नहीं. जिसको सिद्धका स्वीकार है, उसको पुण्यका स्वीकार नहीं. क्योंकि त्रिवर्गसे विवक्षाण मोक्षगति है.

अर्थ-लक्ष्मी, लक्ष्मी. क्या कलते हैं? प्रथम श्रोताको कलते हैं. प्रथम श्रोताको कलते हैं. प्रथम बालजव आया वह सुनता है तो कलते हैं, यदि तुमको पैसेकी-लक्ष्मीकी ईच्छा है तो तुम श्रोता नहीं. रुचिसे, हां! रुचिसे. अस्थिरताकी आसक्तिसे राग आ जाये दूसरी चीज है. परंतु अंतरकी रुचिमें यदि लक्ष्मीकी भावना है, लक्ष्मीमें सुख है और लक्ष्मीमें हित है तो अर्थ नाम लक्ष्मी, धर्म, अर्थ और काम त्रिवर्गमें आती है और मोक्ष तो अपवर्ग है. त्रिवर्गसे भिन्न चीज है. जिसने अंतरमें सिद्ध-शामो सिद्धाणं, 'वंदितु सव्वसिद्धे'. सिद्धको जिसने पर्यायमें वंदन किया, आदर किया, स्थापन किया उसे लक्ष्मीकी रुचि नहीं होनी चाहिये. पल्लेसे? जिसको हृदयमें लक्ष्मीकी रुचि है, उसको सिद्धके सत्कारका आनंद नहीं है और सिद्धका स्वीकार नहीं है. जिसके हृदयमें सिद्धका स्वीकार है, उसके हृदयमें लक्ष्मीका स्वीकार नहीं है. अक बातमें तो दो नहीं रह सकते. क्या, सेकज! क्या कहा?

देषो, क्या कलते हैं? सिद्धगति कैसी है? 'ध्रुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते'. जिसके आत्मामें सिद्धका स्वीकार हुआ और हम कलते हैं कि हम सिद्ध हैं और तुम सिद्ध हो. तो उसके हृदयमें लक्ष्मीकी ईच्छा नहीं होनी चाहिये. ईच्छा (यानी) क्या? रुचिपूर्वक. अस्थिरताकी आसक्ति तो आती है. समझिती है, श्रावक हो तो आसक्तिकी ईच्छा तो आती है. लेकिन रुचिमें सिद्धका स्वीकार किया कि मैं सिद्ध हूं, उसकी रुचि छोडकर लक्ष्मीकी रुचि हो तो उसने सिद्धको स्वीकार नहीं किया और सिद्धको वंदन भी नहीं किया. वो, ये पांच नवकारमें शामो सिद्धाणं नहीं किया, ऐसा कलते हैं. तुम्हें शामो सिद्धाणं करना नहीं आता. तुम्हें सिद्धको नमस्कार करना नहीं आता. सिद्धको नमस्कार करनेवाला सिद्धको

वंदन करनेवाला, सिद्धको अंतरमें स्वीकार करनेवाला, वंदन क्लो या स्वीकार क्लो (अंक ही बात है), सिद्धको वंदन करता है (वह) दूसरेको वंदन नहीं करता. सिद्धका स्वीकार करताहै, (वह) दूसरेका स्वीकार नहीं करता. औसी जिसको रुचि है उसके हृदयमें पुण्यकी रुचि नहीं होनी चाहिये. यदि पुण्यकी रुचि है तो उसे सिद्धकी रुचि नहीं है. और लक्ष्मीकी रुचि है तो सिद्धकी रुचि नहीं है. क्या करना? छोड देना सब? दृष्टिमें तो छोडो, दृष्टिमें तो छोडो. औसा कलते हैं.

रुचि तो पलटो कि मैं सिद्ध समान स्वर्णी हूं. सिद्ध समान. मेरी पर्यायमें जो लक्ष्मीकी ईच्छा होती है, वह ईच्छा ही मैं नहीं हूं, तो लक्ष्मी तो मेरी है ही नहीं. जिसके अंतरमें पुण्य और लक्ष्मीकी रुचि है, उसे सिद्धका वंदन नहीं है. वह एमो सिद्धाणं कर ही नहीं सकता. नौ बार नवकार गिनता है न? ब्रह्मचारीज्! एमो सिद्धाणं. नहीं. भगवान् आचार्य तो पहलेसे कलते हैं, 'वंदितु सव्वसिद्धे'. उसमेंसे हम सब निडावते हैं. अमृतचंद्राचार्य कलते हैं कि जिसकी पर्यायमें मैं सिद्धपद हूं. मेरी पर्यायमें द्रव्यकी शक्तिमें सिद्ध हूं, औसी प्रतीत दुई और सिद्धका स्वीकार किया, उसकी रुचिमें अंक परमाणु लक्ष्मीकी रुचि नहीं होनी चाहिये. अंक परमाणुकी, हां! भाई! परमाणुकी रुचि नहीं है तो ये समकित्ती चक्रवर्तीका राज करते हैं न? क्या करते हैं? वह तो आसक्ति भाव अपनी कमजोरीसे आता है. रुचि नहीं, आसक्तिकी भी रुचि नहीं है, लक्ष्मीकी रुचि नहीं है. आसक्ति तो पहले धर्ममें कली. पुण्य परिणाम होता है वह आसक्ति है. दया, दान, भक्ति, व्रत परिणाम. राग आता है वह पुण्य है. पुण्यकी रुचि है और पुण्यसे शांति होगी, समकित होगा (औसा मानता है तो) तुम्हे सिद्धको वंदन करना नहीं आता. सिद्धका स्वीकार और एमो सिद्धाणं तुम्हे करना नहीं आता.

अर्थ. लक्ष्मीकी भी ईच्छा समकित्तीको नहीं है. सम्यग्दर्शन हुआ और धर्मका श्रोता यथार्थ प्रतीत करनेके सन्मुख हुआ (कि) मैं सिद्ध हूं (उसे लक्ष्मीकी ईच्छा नहीं है). लक्ष्मी तो वर्गमें है और भोक्ष तो अपवर्गमें है और मैं तो भोक्षका कामी हूं. तो मेरी पर्यायमें सिद्धपदका जिसको सत्कार हुआ, उसको लक्ष्मीकी रुचिपूर्वक राग नहीं होता. और यदि रुचिपूर्वक राग हो तो सिद्धाणं कलना उसे नहीं आता, वंदन करना नहीं आता. क्योंकि एमो सिद्धाणंमे तो अकेला पुण्य आता है. तो वह तो पुण्य हुआ. उसने सिद्धका अंतरमें आदर नहीं किया. रागमें रागका आदर किया. एमो सिद्धाणं करके रागका आदर किया. लेकिन एमो सिद्धाणं करके राग रहित जो ज्ञायक स्वभाव है उसकी उसे रुचि, दृष्टि नहीं दुई तो उसे लक्ष्मीकी रुचि है. उसे पुण्यकी रुचि है, वह धर्मी नहीं. बहुत कठिन है. लाजो इपया भर्ष करना, औसा करना, वैसा करना उससे धर्म होगा. वह तो रहा नहीं.

काम. त्रिवर्गका तीसरा. धर्म, अर्थ और काम. सम्यग्दृष्टि और श्रोता, श्रोता. यहां तो उसीको श्रोताके रूपमें स्वीकार करते हैं कि हम हमारी पर्यायमें सिद्धका स्थापन करते हैं. तो उसे विषयभोग, पांच इंद्रियके विषयकी रुचि नहीं है. तीन आये. भगवान् कुंडकुंडाचार्य श्रोता उसे कहते हैं कि हम वक्ता, तुम श्रोता. दोनोंकी अंतर पर्यायमें सिद्धपदका स्थापन किया है. सिद्धको वंदन करनेवाला, उसको पुण्य, लक्ष्मी और भोग-ये त्रिवर्ग कहलाते हैं, मोक्षगति इस वर्गमें नहीं आती. जिसे मोक्षकी इच्छा है, सिद्धको वंदन करनेकी लायकता है और सिद्धपद होनेकी भावना है, उसे पांच इंद्रियका भोग, यक्षवर्तीका राज, वासुदेव, अवदेवका राग, इंद्रपदकी पदवी उसकी भी अंतरमें यह रुचि हो तो उसे सिद्धपदको नमस्कार करना नहीं आता. प्राणभाई! समझमें आता है?

देओ! टीका करते-करते कितना निकालते हैं! पहले श्लोकमें 'वंदितु सव्वसिद्धे'मेंसे इतना निकाला. बादमें 'ध्रुवमचलमणोवमं'में ऐसा (निकाला). फिर 'गदिं पत्ते', 'गदिं पत्ते' पदका अर्थ करते हैं. 'गदिं' मोक्ष. मोक्ष कैसा है? अपवर्ग जो मोक्ष, वह त्रिवर्गसे रहित है. अस्ति-नास्ति करके अर्थ निकाला. अर्थ अस्ति-नास्ति(से किया). त्रिवर्ग तो पुण्य, लक्ष्मी और भोग, ये तीनकी जिसे पर्यायमें रुचि है, उसे सिद्धपदकी रुचि नहीं है. उसे धर्मकी रुचि नहीं है, उसे आत्माकी रुचि नहीं है, उसे संसारकी रुचि है. 'मोक्षगति इस वर्गमें नहीं है, इसलिये उसे अपवर्ग कही है.' क्लो, समझमें आता है?

चार विशेषण आ गये. अक-सिद्धका सत्कार किया-'वंदितु सव्वसिद्धे'में. फिर, 'ध्रुवम'. विनाशिक निमित्तसे गति होती है वह मैं नहीं और भ्रमण जिस भावसे होता है वह मैं नहीं और उपमावायक पदार्थ मैं नहीं. और सिद्ध त्रिवर्गसे अपवर्ग भिन्न है. त्रिवर्गमें कोई भी वर्ग, वर्ग नाम समूह, पुण्य, लक्ष्मी और काम भोगमें कहीं भी उसकी यह रुचि पड़ी हो तो उसे सिद्धपदका आदर करना नहीं आता. अक गाथामें तो बहुत समा देते हैं. समझमें आता है?

'ऐसी पंचमगतिको सिद्ध भगवान् प्राप्त हुआ है.' ऐसी पंचमगतिको सिद्ध भगवान् प्राप्त (हुआ है). क्या कहते हैं समयसारमें भगवान् कुंडकुंडाचार्य? 'उन्हें अपने तथा परके आत्मामें...' भाई! पहले आया था. फिरसे लेते हैं. ऐसी पंचमगति. सिद्ध परमात्मा गतिरहित, गतिका परिभ्रमण पुण्य-पाप भावसे रहित, उपमारहित एवं लक्ष्मी, विषय और पुण्यसे रहित ऐसी सिद्धगति 'उन्हें अपने तथा परके आत्मामें स्थापित करके...' यह लिया. अपने आत्मामें भी स्थापित करता हूं. भगवान् कुंडकुंडाचार्य समयसार कहते हैं. अपने आत्मामें वही सिद्धका आदर है. मुझे व्यवहारका, निमित्त जो भी आया, व्यवहार आये उसका आदर करे तो मिथ्यादृष्टि है. आत्मामें दया, दान,

व्यवहाररत्नत्र आता है. उसका स्वीकार करे और निश्चयका स्वीकार छोड़े तो सिद्धको वंदन करना आता नहीं. प्रथम पंक्तिमें, प्रथम गाथामें सब निकाल दिया. व्यवहार आता है, लेकिन व्यवहारका सत्कार करो कि मुझे ईससे धर्म होगा, वह निमित्तका सत्कार है. निमित्त कदा न? कर्मके निमित्तसे गति होती है वह. निमित्तसे गति होती है उसका स्वीकार किया-निमित्तका, तो गति होनेका स्वीकार किया. लेकिन चार गतिसे रहित सिद्धगति भेरी शक्तिमें है, ऐसी प्रतीत पर्यायमें नहीं की तो उसे धर्मकी वायकात है नहीं.

‘ऐसी पंचमगतिको सिद्ध भगवान प्राप्त हुआ है.’ प्राप्त हुआ है अर्थात् पहले संसारपर्यायमें थे, उसका नाश करके प्राप्त हुआ है. वे त्रिवर्गमेंसे निकल गये. पुण्यमेंसे, लक्ष्मीमेंसे और भोगमेंसे निकलकर पंचमगतिको प्राप्त हुआ. ‘उन्हें...’ आचार्य कहते हैं, मेरे आत्मामें मैं सिद्ध भगवानको स्थापित करता हूँ और परके आत्मामें स्थापित करके. सब आत्मामें? सब सिद्ध हो जायेंगे? यहां तो वक्ता ऐसा ही कहते हैं कि, हमारे पास जो सुनने आये और जिसको हम श्रोता कहते हैं, उसकी पर्यायमें तो हम सिद्धकी स्थापना करते हैं. ना कहेगा तो तू हमारा श्रोता नहीं. नहीं, नहीं, नहीं थोड़ा तो पुण्य चालिये, भैया! राग तो आता है. दसवें गुणस्थान तक राग आता है. ऐसा लोग कहते हैं न? भैया! दसवें गुणस्थान तक राग आता है. आता है, क्या हमको मालूम नहीं है? आता है लेकिन प्रारंभसे जिसको रागरहित में ज्ञाता-ज्ञान सिद्ध समान हूँ, ऐसा जिसको पर्यायमें स्थिर श्रद्धामें जमा नहीं, उसको यहां यथार्थ श्रोता भी कहते नहीं. वो, भाई! ये सब तो निश्चयसे शुरू किया. पहले व्यवहार और बादमें निश्चय, वह सब तो उड़ा दिया, सब उड़ा दिया. पहले व्यवहार करते-करते निश्चय होता है. श्रोताको तो ऐसा सुनाओ. पहले तो ऐसा सुनाओ. कहते हैं कि हम ऐसा सुनाते हैं. क्या? कि तेरे स्वभावमेंसे रागरहित दशा आती है. पर्यायमें सिद्ध समान हूँ, ऐसी रुचि कर. शुरूआत-प्रारंभ वहांसे होता है. बादमें राग आता है उसको व्यवहार कहते हैं. नहीं तो व्यवहार-इवहार है नहीं. अनंत काल ऐसा व्यवहार किया. वह व्यवहार नहीं, व्यवहाराभास है.

‘उन्हें अपने तथा परके आत्मामें स्थापित करके, समयका (सर्व पदार्थोंका अथवा जव पदार्थका) प्रकाशक जो प्राबृत नामक अर्हतप्रवचनका अवयव...’ अब कहते हैं. क्या कहते हैं? शास्त्रका प्रमाण बताते हैं. भाई! शास्त्र भी यह कहता है, हम यह कहते हैं और तुम ऐसा सुनो. तीनों अंक करते हैं. क्या कहते हैं? ‘समयका सर्व पदार्थोंका अथवा जव पदार्थका प्रकाशक प्राबृत नामक अर्हतप्रवचनका अवयव है...’ यह समयसार तो भगवानके मुखसे निकली वाणीका अवयव है, अंश है, पूर्ण नहीं है. ‘अनादिकावसे उत्पन्न हुआ...’ अब क्या कहते हैं? यह समयसार क्यों कहनेमें



आता है? 'अनाटिकावसे उत्पन्न हुआ अपने और परके मोलका नाश करनेके लिये...' क्या कला? समयसार कलने और सुननेमें वही इल आना थालिये कि जिसमें मोलका नाश हो. अक कण भी मोलका रहे वह समयसारका उतना इल नहीं है. राग आता तो है, लेकिन परिणाम तो अपने और परके मोलका नाश (करनेका है). मुनिको तो मिथ्यात्व है नहीं. मोल अर्थात् मिथ्यात्व वो तो. लेकिन समुच्चय मोल लिया है. मुनि कहते हैं कि मेरेमें भी राग है. तो मैं अपने स्वभावमें धोवन करके मेरे रागका भी नाश हो जायेगा और सुननेवालेको सुनाता हूँ कि समयसार सुनाता हूँ. और समयसार विकार रहित, कर्म रहित, नोकर्म रहित तुम हो, सिद्ध समान हो. ऐसा लक्ष्य रभकर यहि सुनेगा तो सुननेवालेको भी 'मोलका नाश करनेके लिये परिभाषण करता हूँ.' राग और भव करानेको परिभाषण नहीं करता हूँ.

तीर्थकरका भव करानेको भी मैं परिभाषण नहीं करता हूँ, ऐसा कहते हैं. ऐसा आया कि नहीं? हिंमतबाँधी! ऐसा आया कि नहीं? 'मोलका नाश करनेके लिये परिभाषण करता हूँ.' मैं समयसार कहता हूँ, वह मेरा राग और तेरा मिथ्यात्व अवं राग, सबका नाश करनेको मैं परिभाषण करता हूँ. उसमेंसे अक रागका कण आओ, तो उसका इल ठीक है ऐसा हमारे शास्त्रमें भाषण आयेगा नहीं. समयसारमें ऐसा आता ही नहीं. समयसार तो आत्माके शुद्ध स्वरूपकी बात करता है. क्योंकि जिसको धर्म थालिये उसे शुद्ध स्वरूपसे ही धर्म मिलता है. अशब्दसे, रागसे और निमित्तसे मिलता नहीं.

'अपने और परके मोलका नाश करनेके लिये परिभाषण करता हूँ.' ऐसी शंका भी नहीं की कि हम कहते हैं, लैया! लेकिन मोलका नाश हो तो हो, नहीं हो तो नहीं भी होगा. पंचमकाल है. ऐसा नहीं कला है. तुमको भी हम सुनाते हैं, लेकिन तुम्हारा मोल नाश हो या नहीं हो, वह हमारे हाथकी बात नहीं है. नहीं. तुम यथार्थ श्रोता हो और हमारे पास सुनने आये हो, किसलिये आये हो? धर्मकी भावना (लेकर आये हैं). यहि धर्मकी भावना तेरी यथार्थ हो तो तुम्हें दृष्टि अंतर स्वभावकी ओर होनी थालिये. तो सुनते-सुनते रागका नाश और स्वभावकी वृद्धि (होनी) वही समयसार परिभाषणका इल है. यहि ऐसी यथार्थ दृष्टि नहीं हुई तो उसने समयसार भी सुना नहीं. समझमें आया? राजराजमञ्जु! क्या कहते हैं?

परके मोलका नाश, ऐसी तुम्हारेमें ताकत है? सुन न. तुम समयसार सुनाते हो और परके मोलका नाश करनेके लिये परिभाषण करता हूँ, तो उसके मोलका नाश तो उससे होता है. आपके परिभाषणसे होता है? ऐसा कला. शब्द तो ऐसा लिया. लैया! ऐसा निमित्त-नैमित्तिक संबंध कहते हैं कि हमारा श्रोता वक्ता जैसी दृष्टि रहते हैं,

ऐसा दृष्टि पलवी शुरूआतमें लक्ष्य करके यद्वि यथार्थतासे सुनता है तो हमें सुननेका (इव वीतरागता आयेगा). क्योंकि सब शास्त्रका इव और समयसारका इव, तेरेमें भ्रम और आसक्तिनाश करनेका अभिप्राय है. उसमें राग रजनेका शास्त्रका अभिप्राय कभी नहीं होता. कलो, समझमें आता है?

मैं परिभाषण करता हूँ. परिभाषण करता हूँ, वह भी निमित्तसे कथन है, हां! लेकिन अंतरमें भावज्ञानका घोवन करता हूँ. वह पहले आया था न? भाववचन. भाववचन अर्थात् मैं ज्ञानस्वभावमें कैसी यथार्थ निर्णयिकी स्थिरता होती है उसमें मैं घोवन करता हूँ. तो मेरेमें भी रागका अभाव हो जायेगा. और तेरेमें भी मैंने सिद्धपदकी स्थापना की है. उसका तुम स्वीकार कर चुके हो. स्वीकार कर चुका है कि मैं सिद्ध हूँ. तो सुनते-सुनते भी तुझे स्वभावके अवलंबनमें राग और मोहका नाश हो जायेगा. तुम भी सिद्ध हो जाओगे, मैं भी सिद्ध हो जाऊंगा. सिद्ध तो सिद्ध है ही, सिद्ध तो सिद्ध है ही. मैं भी सिद्ध होऊंगा. शंका नहीं है कि अनंत भव होंगे तो? क्या करे? अनंत भव भगवानने देभे होंगे. अरे..! भगवानने तेरे भव देभे हैं?

भगवानका जिसने निर्णय किया... भगवानने देभा, ऐसा कहते हैं न? भगवानने देभा है ऐसा भगवानका निर्णय किया उसका मोह नाश हुआ बिना रहता नहीं. भगवानके पास पापंड रहता नहीं और पापंडके पास भगवान आते नहीं. भगवानके पास पापंड नहीं रहता और पापंडके पास भगवान आते नहीं. भगवान! तुम सिद्ध हो. क्योंकि तुम धर्म सुनने आये हो. दूसरी बात मत करना. राग आया तो मुझे इव तो भिवा. अरे..! कला न? ध्रुव, अचल, अनुपम. और त्रिवर्गसे अपवर्ग भिन्न यीज है. उसकी तो मैंने तेरी पर्यायमें स्थापना की है. उसका तूने स्वीकार किया है. तो तेरेमें भी जो मोहका भाव है उसका नाश करनेके लिये मैं परिभाषण करता हूँ. तो सुननेमें तेरा लक्ष्य, स्वभावका लक्ष्य रजकर सुनना. तेरा भी राग नाश हो जायेगा और मेरा भी राग नाश हो जायेगा. वह समयसारका इव है.

परिभाषण करता हूँ. नहीं तो ऐसा कहते हैं, वाणी निकलती है जडसे. अपना विकल्प राग है. और सुननेवालेको भी सुननेमें राग है. रागका लक्ष्य नहीं, वाणीका लक्ष्य नहीं, हम तो सिद्ध हैं, ऐसा हमारा मुख्य लक्ष्य है. तो तू भी ऐसे सुन तो तेरा भी राग, पुण्य और निमित्तका लक्ष्य छूटकर स्वभाव परिपूर्ण हो जायेगा. इसलिये मैं समयसार कहता हूँ. ब्रह्मचारीज! क्या समयसार ऐसे ही कहते हैं? सिद्ध ही हो जायेगा. लेकिन शास्त्रमें ऐसा आता है न कि आरहवे गुणस्थानसे गिर जाता है. कर्म ऐसा आ जाता है. अरे..! क्या सुननेमें आया? क्या सुनते हो तुम? सिद्धपद सुनने आये हो कि संसारपद? संसारपद तो तुमने अनंत कालसे घूटा है. तो सिद्धपद

जो सुनने आया उसे शंका भी नहीं पड़ती कि कैसा कर्म आयेगा? ऐसा होगा. अरे..! कुछ आता नहीं. तेरी द्रव्यमेंसे सिद्धपर्याय आ जायेगी. तेरी द्रव्य शक्तिमें, जो मैंने पर्यायमें सिद्धपद स्थापित किया, तो पर्यायमें सिद्धपद आ जायेगा. दूसरा आता नहीं. ऐसा श्रोता ऐसी रुचि करके सुनता है उसके लिये यह प्रवचन है. दूसरेके लिये प्रवचन नहीं है. कलो, समझमें आया? समझमें आता है? वह कहते हैं. समयसारकी पहली गाथा चलती है.

‘वह अर्हत्प्रवचनका अवयव...’ अब, अवयवका प्रमाण बताते हैं. ‘वह अर्हत्प्रवचनका अवयव...’ शास्त्र और शास्त्रका मैं परिभाषण करता हूं. उसमें सिद्धको वंदन करता हूं. अब, शास्त्रका प्रमाण बताते हैं. शास्त्र प्रमाण है, हमारी वाणी प्रमाण है, वाणी, शास्त्र प्रमाण है और दिव्यध्वनि निकली हुई वाणी है. ‘अर्हत्प्रवचनका अवयव अनादिनिधन परमागम शब्दब्रह्मसे प्रकाशित होनेसे...’ कैसा है अर्हत्प्रवचनका अवयव समयसार? अवयव नाम अंश. पूर्ण तो बारह अंगमें है. अर्हत्प्रवचन-अर्हत्प्रवचन. सर्वज्ञके वचन, प्र-वचन-प्रधान वचन. उसका अवयव अनादिअनंत परमागम. वो. परमागम अनादिअनंत है, किसीने बनाया नहीं. अनादिअनंत जैसा केवलज्ञान है, अनादिअनंत केवलज्ञानी जगतमें है कि नहीं? कभी केवलज्ञान नहीं होता ऐसा है? जैसे परमागम भी अनादिअनंत है. हिंमतबाई! परमागम अनादिअनंत? वो, ईसने बनाया. ब्रह्मचारी! परमागम अनादिअनंत (कहा). आदि नहीं, अंत नहीं. वाणी भी अनादिअनंत है. सिद्धो वरुण सामान्य. परमागमकी वाणी भी अनादिसे चली आती है. केवलज्ञानका प्रवाल भी अनादिसे चला आता है और वाणी भी अनादिसे चली आती है. यथार्थ, जैसा वाच्य केवलज्ञान और धर्म अनादिसे है, जैसे वाचक भी अनादिसे वाणी परमागम सत्य आगम चले आते हैं.

अनादिअनंत परमागम. देओ! समयसारको परमागम कहा. ‘शब्दब्रह्मसे प्रकाशित होनेसे...’ ऐसा परमागम शब्दब्रह्म भगवानकी दिव्यध्वनि होनेसे ‘सर्व पदार्थोंके समूहको साक्षात् करनेवाले...’ ‘सर्व पदार्थोंके समूहको साक्षात् करनेवाले केवली भगवान सर्वज्ञदेव द्वारा प्राणीत होनेसे...’ प्रमाण कहा. वाणी कैसी है? सर्वज्ञ भगवान द्वारा प्राणीत होनेसे. वह तो निमित्तसे कथन है. वाणी तो वाणीके कारणसे निकली है. सर्वज्ञ तो आत्मा है. लेकिन निमित्त-नैमित्तिक संबंध बताते हैं. जैसा श्रोता-वक्ताका संबंध बताया, वैसे वाणी और केवलज्ञानीका संबंध बताते हैं. श्रोता-वक्ताका संबंध बताया कि मैं भी सिद्ध और तुम भी सिद्ध. जैसे वाणी सर्वज्ञकी और सर्वज्ञ, उसका निमित्त-नैमित्तिक संबंध है. भगवानको ऐसी ईच्छा नहीं है कि मैं वाणी निकावूं. लेकिन वाणी ऐसी निकलती है कि सर्वज्ञदेव द्वारा प्राणीत कथन उपदेश होनेसे.

‘तथा स्वयं अनुभव करनेवाले श्रुतकेवली...’ ‘केवलियोंके निकटवर्ती साक्षात् सुननेवाले तथा स्वयं अनुभव करनेवाले श्रुतकेवली गणधरदेवोंके द्वारा कथित होनेसे प्रमाणाताको प्राप्त है.’ शास्त्रका प्रमाण बताया. जो हम कहेंगे, वह हमारे प्रमाणज्ञानसे कहेंगे. क्योंकि साक्षात् तीर्थकरकी दिव्यध्वनिसे आया है और गणधरसे वह वाणी आयी है. ‘यह अन्यवादियोंके आगमकी भांति छद्मस्थ (अज्ञानियों)की कल्पनामात्र नहीं है...’ समयसार कहूंगा वह कल्पनामात्र नहीं है. तुम्हारेमें मकान नहीं करते? मकानकी क्या करते हैं? यतुर सीमा. मकानके (कागजतमें) विभते हैं न? उसमें यतुरसीमा विभते हैं कि पूर्वमें वह मकान है, पश्चिममें यह है, उत्तरमें, दक्षिणमें वह मकान है. और बिना कोई आधार मकान है ऐसा नहीं. ऐसी यतुर सीमा विभते हैं. भगवान कुंदकुंदाचार्य कहते हैं, उसका कथन करनेवाले मङ्गलवाच नहीं है. सर्वज्ञकी वाणीसे कथन आया है. समझे? और गणधरसे अनुभव किया उसकी वाणी निकली है.

‘यह अन्यवादियोंके आगमकी भांति छद्मस्थ (अज्ञानियों)की कल्पनामात्र नहीं है कि जिसका अप्रमाण हो.’ अपने शास्त्रका प्रमाण बताया कि शास्त्र प्रमाण, वाणी प्रमाण, हम प्रमाण और तुम सुननेवाला सिद्ध समान सिद्ध किया, तुम भी प्रमाण. ऐसी दृष्टि और रुचि करके जो सुने उससे सब प्रमाण होता है.

मुमुक्षु :- ..

उत्तर :- क्या कहते हैं? .. क्या?

मुमुक्षु :- ..

उत्तर :- वही सरलता लुयी. क्या धूल चालिये तुमको? क्या सुनने आये हो? लक्ष्मीकी रुचि छुड़ा दी, भोगकी रुचि छुड़ा दी, पुण्यकी रुचि छुड़ा दी और स्वभावकी रुचि करवायी. अस्तुत कडक. सुगम है. तेरी चीज तेरे पास है. तेरी चीज तेरे पास शक्ति है. शक्तिका भंडार है. मैं आत्मा हूं और वर्तमान पर्यायमें यदि शांति चाहते हो, शांति प्राप्त होनेकी ईच्छा है तो तू अंतरमें शक्तिमें सिद्धपद अंदरमें प्रतीत करो, ऐसा ही सरल स्वभाव है. वही सरलता है. नहीं तो दूसरी कडक बात विपरीत है. अनंत कालसे परमें पुरुषार्थ किया लेकिन एक परमाणु अपना हुआ नहीं. अनंत कालसे पुरुषार्थ किया, क्या एक परमाणु अपना हुआ? एक रजकण अपना हुआ? और सिद्धपदकी पर्यायिका पुरुषार्थ करे तो अल्प कालमें सिद्ध (हो जाता है). कहते हैं, मोलका नाश अल्प कालमें हो जायेगा. अनंत कालसे तूने मोलका घूटन किया है, घूटना कहते हैं न? घोलन करते हैं. भरलमें घूटते हैं. चीकना कर दिया. चोसठ पल्लोरी छोटीपीपर घूटते हैं न, घूटते हैं. जैसे राग पुण्य मैं, राग पुण्य मैं, राग पुण्य मैं, निमित्त मैं, भोग मैं, लक्ष्मी मैं. जैसे घूटते-घूटते जो चीकना मिथ्यात्व बना दिया है, उसे यदि तुझे छोड़ना है

और धर्म करना है तो मैं सिद्ध समान सदा पद मेरो (ऐसी प्रतीत कर). पहलेसे वह लिया. उसकी दृष्टिमें सिद्ध लक्ष्यमें आना चाहिये. दूसरा लक्ष्य छूट जाना चाहिये.

आसक्ति तो ज्ञानीको भी होती है, अस्थिरता आती है, राग आता है, अशुभ है, विषयभोगकी आसक्ति होती है, लेकिन उसकी रुचि नहीं होनी चाहिये. रुचि दूसरी चीज है, आसक्ति दूसरी चीज है. यहां तो रुचिका पलटा करते हैं. तेरी रुचि धर्म, अर्थ और काम, पुण्य, लक्ष्मी और भोगमें एवं कर्मके निमित्तकी गतिमें है, गति रहित आत्मा, भ्रमण रहित, पुण्य, लक्ष्मी और भोग रहित आत्माकी ओर लक्ष्य कर तो तेरा भोड़ नाश हुआ बिना रहेगा नहीं. वह सरल और सत्य उपाय अके ही है, लेकिन लोगोंको सुननेमें आया नहीं. कहां, समझमें आया?

देओ! अके गाथामें कितना भर दिया है!

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते।

वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं॥१॥

उसमेंसे निकाला. 'वोच्छामि' कलता हूं, परिभाषण करता हूं. 'समयपाहुड' समयप्राप्त. 'इदं' 'सुदकेवलीभणिदं'. 'इदं', 'इदं' प्रत्यक्ष कला, प्रत्यक्ष. 'सुदकेवलीभणिदं' केवली और श्रुतकेवलीने कला हुआ समयसार तुमको कलूंगा. और सुननेवाले तुम्हें भी भोड़का नाश होगा. उसमें शंका नहीं है. सुननेवालेमें ऐसा लक्ष्य हो तो सुननेवाला कला न. नहीं तो सुननेवाला भी नहीं कला.

भगवान! तेरा स्वभाव तो सिद्ध समान तेरेमें है. बाहर लटकनेसे कुछ नहीं मिलता. लटकनेमें रुचि छोड़ और स्थिर पदमें रुचि कर और सुन. तेरा सब राग नाश हो जायेगा. वो, आशिर्वाद दिया. आशिर्वाद दिया तो उनके आशिर्वादिसे मिलता है? सिद्धपदका लक्ष्य किया तो लक्ष्य करते.. करते.. करते.. सुनता है तो राग घटकर स्वभावमें स्थिर हो जायेगा. स्थिर हो जायेगा और सिद्धपद प्राप्त हो जायेगा. वह श्रोताका और वक्ताका लक्षण और शास्त्रका लक्षण, तीन लक्षण आंघे. तीन लक्षण आये. शास्त्र किसको कलते हैं? श्रोता किसको कलते हैं? वक्ता किसको कलते हैं? ये तीनका लक्षण अके गाथामें आ गया. वह गाथा पूरी हुई. उसका भावार्थ जयचंद्र पंडित करते हैं.

भावार्थ :- 'गाथासूत्रमें आचार्यदेवने' 'वक्ष्यामि' कला है... 'वोच्छामि' कला था न? 'वोच्छामि'. 'उसका अर्थ टीकाकारने 'वच परिभाषणे' धातुसे परिभाषण किया है. उसका आशय ईसप्रकार सूचित होता है कि यौदह पूर्वोंमेंसे ज्ञानप्रवाद नामक पांचवे पूर्वमें बारह 'वस्तु' अधिकार हैं; उनमें भी अके अकेके बीस बीस 'प्राप्त' अधिकार हैं. उनमेंसे दशवें वस्तुमें समय नामक जे प्राप्त है उसके मूलसूत्रोंके शब्दोंका ज्ञान पहले बड़े आचार्योंको था...' अब, समयप्राप्तका

जयचंद्र पंडित सिद्ध करते हैं कि उसमें 'वोच्छामि' लिखा है उसका क्या अर्थ है। उसका ज्ञान पहले बड़े आचार्य संतो द्विगंबर मुनि थे उनको था।

'उसके अर्थका ज्ञान आचार्योंकि परिपाटीके अनुसार श्री कुंडकुंडाचार्यको ली था।' हेभो, उनकी परिपाटीके अनुसार (लिखा है)। परिपाटीके अनुसार, परंपराके अनुसार। मुनि थे, भावविंगी संत आचार्य कुंडकुंडाचार्य थे। लेकिन परंपराकी बातमें एक अक्षर ली तोडा नहीं। सर्वज्ञ भगवानकी वाणी निकली, ऐसी गणधरने जेली, ऐसी आचार्योंकी परिपाटीसे आयी, 'उसके अर्थका ज्ञान आचार्योंकि परिपाटीके अनुसार श्री कुंडकुंडाचार्यको ली था। उन्होंने समयप्राप्तका परिभाषण किया-परिभाषासूत्र बनाया।' 'वोच्छामि'का अर्थ करते हैं।

'सूत्रकी दश जतियां कही गयी हैं,...' सूत्रमें दस प्रकारकी जति है। वह तो परिभाषणका अर्थ करते हैं। 'उनमेंसे एक 'परिभाषा' जति ली है। जो अधिकारको अर्थके द्वारा यथास्थान सूचित करे वह 'परिभाषा' कहलाती है।' उसमें बडा भर्म है। क्या कहते हैं? 'वोच्छामि समयपाहुड' ऐसा कहा। तो 'वक्ष्यामि' उसमेंसे परिभाषण किया। जहां-जहां जवका अधिकार, अजवका अधिकार, पुण्य, पाप नौ पदार्थ जहां-जहां जैसे होने चाहिये वैसा कहा है। समझे? परिभाषणका अर्थ करते हैं। 'जो अधिकारको अर्थके द्वारा...' अर्थके द्वारा 'यथास्थान...' यथास्थान। जिसका जो स्थान है, आस्रवका अधिकार आस्रवमें है, संवरका संवरमें, निर्जराका निर्जरामें। और आस्रवमें ली जघन्य, उत्कृष्ट बात ली आती है न। आस्रवमें आती है। जघन्य सम्यग्दृष्टि जगतक हो, तबतक समझितीको ली बंधन, आस्रव थोडा होता है। वह सब यथास्थानमें लिखा है। भाई!

समयसारकी एक-एक ४१५ गाथा है, वह यथास्थान, यथास्थान (है)। एक, दो, तीन, चार, पांच, छः जैसे ४१५। यथास्थान। जैसे यस्मा तो यहां होना चाहिये न? कि यस्मा यहां होना चाहिये? जैसे जहां-जहां जो सूत्रकी जैसी गाथाका प्रयोजन जरूरी था ऐसा यथास्थानमें 'सूचित करे वह परिभाषा कहलाती है।' ऐसी परिभाषासे समयसार बनाया है। समयसारकी बडी महिमा कही। अमृतचंद्राचार्यने 'वोच्छामि'का अर्थ परिभाषण किया है। उसका जयचंद्र पंडित अर्थ निकालते हैं कि परिभाषण क्यों कहा। सूत्रकी दस प्रकारकी जतिमें परिभाषण नामका एक सूत्र, सत्र है। उसमें यथास्थान जो जहां जैसे होना चाहिये, उसकी रचना होती है उसका नाम परिभाषा सूत्र कहते हैं। समयसार परिभाषा सूत्र है। यथास्थानमें सब हुआ है। 'श्री कुंडकुंडाचार्यदेव समयप्राप्तका परिभाषण करते हैं-अर्थात् वे समयप्राप्तके अर्थको ली...' समयप्राप्तके अर्थको ली। अर्थात् करके दूसरा अर्थ लिया। भाई! अर्थात् कहकर फिरसे लिया। परिभाषणका

अर्थ लिया. 'अर्थात् वे समयप्राप्तके अर्थको ही यथास्थान बतानेवाला परिभाषासूत्र रचते हैं.'

'आचार्यने मंगलके लिये सिद्धोंको नमस्कार किया है. संसारीके लिये शुद्ध आत्मा साध्य है...' देओ! क्या कला? संसारी आत्माका ध्येय तो सिद्ध होना चाहिये. सिद्ध ध्येय. पहले आया था न? प्रतिच्छंद, प्रतिच्छंद आया था. पडवा. देओ न, आवाज निकलती है तो सामने दूसरी आवाज निकलती है. पहले बोला, मैं सिद्ध. तू सिद्ध. औसा अेक प्रतिच्छंद आता है. आता है न? 'शुद्ध आत्मा साध्य है...' संसारीजवको क्या साध्य-ध्येय है? पुण्य साध्य है? गति साध्य है? विकार साध्य है? भोग साध्य है? संसारीजवका यथार्थ साध्य तो सिद्ध होना चाहिये. उसको छोडकर कोई दूसरा साध्य बनावे तो उसको धर्मकी जबर ही नहीं. धर्म सुननेके लायक नहीं. 'संसारीके लिये शुद्ध आत्मा साध्य है...' सब संसारी? यहां तो श्रोताको कहते हैं कि नहीं? संसार तो परिभ्रमणरूप दुःखकारण भाव है. संसार नाम आत्मामें उदयभाव राग-द्वेष, अज्ञान होता है वह संसार है. वह तो दुःखका कारण है. वह हित चाहता हो और कल्याण चाहता हो तो शुद्ध आत्मा साध्य है. साध्य समझे? ध्येय, लक्ष्य. 'और सिद्ध साक्षात् शुद्ध आत्मा है, ईसलिये उन्हें नमस्कार करना उचित है.' ईसलिये उनको नमस्कार भगवान कुंडकुंदाचार्यने किया है.

'यहां किसी ईष्टदेवका नाम लेकर नमस्कार क्यों नहीं किया? ईसकी रचार्थ टीकाकारने मंगलाचरण पर की है, उसे यहां भी समज लेना चाहिये.' वह आया न? 'नमः समयसाराय'में. 'नमः समयसाराय'में आ गया है. समयसार आया उसमें सब ईष्टदेव आ जाते हैं. 'सिद्धोंको 'सर्व' विशेषण देकर वह अभिप्राय बताया है कि सिद्ध अनंत हैं.' कोई कहते हैं कि अेक सिद्ध है, वह जूठी बात है. अनंत सिद्ध हो गये. अनंत अनंत. क्योंकि मेरे पहले भी मेरे जैसे साधकजव अनंत हुआ. जैसे साधक अल्प कालमें सिद्ध हुआ तो अनंत हो गये. मैं भी अल्प कालमें सिद्ध होनेवाला हूं. तो मेरे पहले भी जो आत्माका लक्ष्य और रुचि करके साधक थे, अल्प कालमें सिद्ध होते हैं. सिद्ध होनेमें अनंत काल नहीं चाहिये. अनंत काल नहीं चाहिये. साधकभाव अनंत काल रहता नहीं. साधकभाव अनंत काल रहता ही नहीं. समजमें आया? अर्ध पुद्गलपरावर्तन रहता है न? समकित होनेके बाद अर्ध पुद्गलपरावर्तन रहता है. वह तो छूटता नहीं उसको साधकभाव कहते हैं. यहां तो साधकभावकी बात की है न. मैं ज्ञान हूं, शुद्ध चैतन्य हूं, औसी रुचिसे धर्मकी शुरुआत हुई, वह साधकभावका काल ही असंख्य समय है. अनंत समय होता ही नहीं. समजमें आता है?

साधक-धर्मका साधनेवाला विचार करता है, मैं भी साधक ज्ञानस्वभाव चिदानंद में हूँ, उसे साधनेवाला हूँ. राग आता है, विकार है उसका साधनेवाला नहीं. तो अल्प कालमें मेरी साधकदशा सिद्धपर्यायको प्राप्त हो जायेगी, साधकका व्यय होकर. तो मेरे पहले भी अनंत सिद्ध हो गये. क्योंकि अनंत काल हो गया. और अनंत कालमें असंख्य कालमें अनेक सिद्ध होता है. असंख्य काल नहीं, असंख्य समयमें. छः महीने और आठ समयमें तो ६०८ सिद्ध होते हैं. तो जैसे अनंत मेरे पहले सिद्ध हो गये. ईसलिये कहते हैं कि सिद्ध अनंत हैं.

‘ईससे यह माननेवाले अन्यमतियोंका भंडन हो गया कि ‘शुद्ध आत्मा अनेक ही है’ कोई कहता है न कि सिद्ध अनेक ही है. ज्योतमें ज्योत मिल गई. रात्रिमें कोई प्रश्न हुआ था. सिद्ध होता है तो अनेक चैतन्य दूसरेमें मिल जाता है. अरे..! मूढ़ है. क्या मिल जाता है? सत्ता अनादिसे भिन्न है और शुद्धकी सत्ता भिन्न रभी तो अशुद्धका नाश करके शुद्धमें सत्ता मिल गई तो अपना ही नाश हो गया. सत्तामें स्थिरता तो आयी नहीं, लेकिन सत्ताका अभाव हो गया. अपनी शुद्ध चिदानंद सत्ता उसकी पर्यायमें विकार था, उसका नाश करके पर्यायमें शुद्धता आनी चाहिये, उसके बजाय ऐसा कहते हैं, सिद्ध मिल गये. ज्योतमें ज्योत मिल गई. जैन नाम धारण करता है उसे भी मालूम नहीं है कि अनंत सिद्ध स्वतंत्र वहां है. पैंतालीस लाख योजनमें है. प्रत्येक सिद्ध परमात्मा अपने आनंदका अनुभव प्रत्येक भिन्न-भिन्न करते हैं. किसीकी किसीमें मिलावट नहीं होती.

मुमुक्षु :- ..

उत्तर :- क्षेत्र मर्यादित है और सिद्ध अनंत हैं. उसमें क्या हुआ? क्षेत्र थोड़ा है. यह थोड़ा क्षेत्र है, उसमें हजार दीपक करो, लाख करो, सब परमाणु यहां समा जायेंगे. उसमें किसीको दबना नहीं पड़ता. छोकर नहीं जाते. सब भिन्न-भिन्न रहते हैं. दीपकका प्रकाश परमाणु इपी मूर्त अजब वह भी टक्कर नहीं जाते हैं, स्वतंत्र रहते हैं. तो अल्प क्षेत्रमें सिद्ध भगवान अपने-अपने आनंदके अनुभवमें सब स्वतंत्र रहते हैं.

मुमुक्षु :- .

उत्तर :- अनंतगुने अनंतगुने जव. चाहे जितने भी हो.

‘श्रुतकेवली’ शब्दके अर्थमें (१) श्रुत अर्थात् अनादिनिधन प्रवालरूप आगम...’ वो, आगम कहा. ‘और केवली अर्थात् सर्वज्ञदेव कहे गये हैं...’ दोनोंकी बात ली. ‘उनसे समयप्राप्तकी उत्पत्ति बताई गई है.’ क्या कहते हैं? केवली और श्रुतकेवलीसे हमारे शास्त्रकी उत्पत्ति हुई है, उस शास्त्रको हम कहते हैं. साक्षात् कुंडकुंडार्यायकी ध्वनि कैसी है! श्रुतकेवली. तो उनके गुरु तो जैसे श्रुतकेवली नहीं थे. भाई!



उनके गुरु तो श्रुतकेवली नहीं थे। श्रुतकेवली और केवलीसे समयसारकी उत्पत्ति हुई है। ऐसा मैं समयसार कहता हूँ। भगवानके पास गये थे, आठ दिन भगवानके पास रहे थे और बादमें समयसार, प्रवचनसार आदि भगवान कुंडकुंदाचार्यने शास्त्रकी प्रतिष्ठा भरतक्षेत्रमें की। तो कहते हैं, 'उनसे समयप्राप्तकी उत्पत्ति बताई गई है.'

'ईसप्रकार ग्रंथकी प्रमाणांकता बताई है और अपनी बुद्धिसे कल्पित कहनेका निषेध किया है।' अपनी बुद्धिसे मैं कल्पित नहीं कहता हूँ। अनादिनिधन... यद्यपि अनुभवसे कहता हूँ, ऐसा कहेंगे। लेकिन एक अक्षर भी कल्पित नहीं है। वह तो परंपरा अनादिसे चली आयी है, वही बात मैं कहूँगा। 'अन्यवादी छत्रस्थ (अल्पज्ञ) अपनी बुद्धिसे पदार्थका स्वरूप चाहे जैसे कहकर विवाद करते हैं, उनका असत्यार्थपना बताया है.'

अब, एक गाथा पूरी हुई। अब, दूसरी गाथा कहते हैं। दूसरी गाथामें क्या कहते हैं? 'ईस ग्रंथके अभिधेय,...' अभिधेय क्या? मैं क्या कहना चाहता हूँ। वाच्य। अभिधेय अर्थात् वाच्य, ध्येय। शुद्धात्मा ध्येय, उसको मैं कहनेवाला हूँ। वह मेरा ध्येय है। शुद्धात्मा। अशुद्धताका अनुभव तो अनादिसे करते हो। उसमें कोई नवीनता नहीं है। 'अभिधेय, सम्बन्ध...' वाचक शब्दका संबंध है। अभिधेय सिद्ध आत्मा-शुद्धात्मा अभिधेय है और शब्द उसका वाचक निमित्त संबंध है। 'प्रयोजन तो प्रगट ही है।' क्या कहें? हेओ! 'शुद्ध आत्माका स्वरूप अभिधेय (कहने योग्य) है।' अभिधेय कहां अथवा कहने योग्य कहां। 'उसके वाचक ईस ग्रंथमें जो शब्द हैं उनका और शुद्ध आत्माका वाच्यवाचकस्वरूप संबंध है...' संबंध है न? जैसे शक्कर। शक्कर शब्द है और शक्कर पदार्थ उसका वाच्य है। वाच्य समझे? शक्कर होती है न? गुड लो। शक्कर, गुड शब्द है तो उसका वाच्य है। वाच्यवाचक संबंध है। शक्कर वाचक है और शक्कर पदार्थ वाच्य है। जैसे समयसार वाचक है और शुद्ध आत्मा उसका वाच्य है। हम तो समयसारमें शुद्धात्मा ही कहनेवाले हैं। क्योंकि अशुद्ध तो अनादिकालसे पर्यायबुद्धि (है ही)। पर्यायबुद्धि, रागबुद्धि, पुण्यबुद्धि, विकाररुचि वह तो पर्यायबुद्धिसे अनादि कालसे अनुभव करते आया ही है, उसमें कुछ नया नहीं कहना है। समझे?

'और शुद्धात्माके स्वरूपकी प्राप्ति होना प्रयोजन है।' लो, प्रयोजन बताया। क्या कहते हैं? प्रयोजन क्या है? शुद्धात्माके स्वरूपकी प्राप्ति। पुण्यकी प्राप्ति, स्वर्गकी प्राप्ति, जगतमें आचार्यपदकी प्राप्ति, भाई! आचार्यकी नहीं? बडा आचार्य हो तो? ना कहते हैं। वह प्रयोजन नहीं है। उपाध्यायपदकी प्राप्ति। बडी-बडी प्रज्ञा, ऐसा होता है, जैसे बडी-बडी उपाधि देते हैं न? ... वह सब कोई उपाधि नहीं। उपाधिका प्रयोजन नहीं है। 'शुद्धात्माके स्वरूपकी प्राप्ति होना प्रयोजन है।' वाचक समयसार, वाच्य आत्मा

और उसका प्रयोजन शुद्धात्माकी प्राप्ति. दूसरा कोई प्रयोज है नहीं. उस प्रयोजनसे यदि सुने तो उसे वास्तविक वीतराग और समयसार कलनेवालेका वाचकका उसे ज्ञान होता है. यदि प्रयोजन दूसरा रहे (अर्थात्) सुननेसे मुझे कैसे मिलेंगे, लक्ष्मी, ईश्वर, कीर्ति, हम धर्मी कलवायेंगे. हमेशा धर्म सुनना, समयसार सुनना बड़ा अध्यात्मिक कलवायेंगे. समयसार सुननेसे अध्यात्मिक कलवायेंगे. दुनियामें मान मिलेगा. उसको शुद्धात्माका प्रयोजन है नहीं. ओहो..! वह तो बड़ी चर्चा करते हैं. समयसारकी. और समयसार शास्त्र तो बड़ा गहन है. यहां कलते हैं कि भगवान! गहनमें तो शुद्धात्माकी प्राप्ति ली प्रयोजन है, भैया! उसमें कोई प्रयोजन पदवी, लाभ, पुण्य, जगतकी ईश्वर, कीर्ति, संघ समुदाय अथवा मेरे ईतने भक्त हो, जैसे कोई प्रयोजनसे सुने तो उसको श्रोता यथार्थमें कलते नहीं. 'शुद्धात्माके स्वरूपकी प्राप्ति लोना प्रयोजन है.'

भगवानने 'प्रथम गाथामें समयका प्राप्ति कलनेकी प्रतिज्ञा की है. ईसलिये यह आकांक्षा लोती है कि समय क्या है?' पहले कल न? समयप्राप्ति कलंगा. समयप्राप्ति कलंगा. तो शिष्यको आकांक्षा लोती है, प्रभु! आप समय किसको कलते हो? आप समय किसको कलते हो? ऐसी आकांक्षा लोता है. आकांक्षा लोती है जैसे शिष्यकी ईच्छा उत्पन्न लुई. प्रभु! समय किसको कलते हैं? 'ईसलिये पहले उस समयको ली कलते हैं.' समयप्राप्ति कलंगा, ऐसी प्रतिज्ञा की थी तो शिष्यको आकांक्षा लुई. जैसे लिया, भाई! शिष्यने आकांक्षा बतायी कि समय किसको कलते हो? आप समय किसको कलते हो? प्रभु! आप तो कलते हो, समयप्राप्ति (कलंगा) और सिद्धपदकी स्थापना की. तो आप समय किसको कलते हो? ऐसी आकांक्षा रहनेवालेको समय किसको कलते हैं, वह दूसरी गाथामें भगवान कुंडकुंडाचार्य कलेंगे कि ईसको हम समयसार कलते हैं. विशेष आयेगा...

(श्रोता :- प्रमाणा वचन गुरुदेव!)